Chap-6

:: षष्ठ अध्याय ::

:: आलोच्य उपन्यासों में नवीन भाषाभिव्यंजना ::

: : षष्ठ अध्याय::

: आलोच्य उपन्यासों में नवीन भाषाभिव्यंजना :

प्रास्ताविक:

हमारे आलोच्य उपन्यास तीन हैं--- "राग दरबारी", "मुझे चांद चाहिए", और "काशी का अस्सी"। पूर्ववर्ती अध्यायों में क्रमश: इनकी "भाषिक-संरचना" पर विचार किया गया है। अब इस अध्याय में इन तीनों उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में उनमें जिस "नवीन भाषाभिव्यंजना" का सन्निवेश हुआ है, उस पर विश्लेषणात्मक ढंग से विचार किया जायेगा। उपन्यास कथा-साहित्य का प्रकार है, अत: उसमें एक मुकम्मल कथा तो होनी ही चाहिए। मुंशी प्रेमचंद ने कहा कि मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को उद्घाटित करना उपन्यासकार का चरम-लक्ष्य होना चाहिए।[1] यहां "रहस्य" शब्द विचारणीय है। "रहस्य" इसलिए कि मानव-चरित्र को उद्घाटित करना कोई सामान्य कार्य नहीं है। डा. अटल ने (मुझे चांद चाहिए) भले ही कहा हो कि "वर्षा" तुम तो आइसबर्ग निकली"[2] पर सचमुच में देखा जाए तो प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप में एक "आइसबर्ग" होता है। वह जितना दिखता है, बाहर से, उतना और वैसा होता नहीं है। अत: उपन्यासकार परकाया-प्रवेश की प्रक्रिया द्वारा उसे यथासंभव बाहर लाने की कोशिश करता है। पर ध्यान रहे, यह "कोशिश" ही है। शत-प्रतिशत वह भी नहीं कर पाता। तो उपन्यासकार मानव-चरित्र को चित्रित करने की कोशिश करता है। यह जो मनुष्य है उसका अपना एक समाज होता है। उसी समाज में उसकी यथार्थता होती है। उसके बाहर ले जाने की चेष्टा करेंगे तो वह चरित्र अयथार्थ हो जायेगा। फिर मनुष्य के अपने विचार होते हैं। दूसरे उपन्यासकार भी केवल कथा कहने के लिए उपन्यास नहीं लिखता। उसका कोई एक द्रष्टिकोण होता है। और यह सब उपन्यासकार को करना है, तो उसके पास

साधन क्या है, माध्यम क्या है? उपन्यासकार साहित्यकार होता है, और साहित्यकार का माध्यम भाषा है। बात एक होती है। पर उसके कहने के कई ढंग होते हैं। कोई एक चीज या वस्तु है, उसे कोई लपक लेना चाहता है। हथिया लेना चाहता है। अब इस बात को कहना है, तो कई उसके ढंग होते है। एक ढंग वह है जो आजकल हम विज्ञापनों में एक बच्चे की चालाकी के रुप में देख रहे हैं। वह खाद्य वस्तु "डैडी" के हाथा में है और बच्चा अचक-से कहता है---"मम्मी आयी।" "डैडी जहां पीछे मुड़ते हैं बच्चा वह चीज उनके हाथों से झपट लेता है। एक दूसरा ढंग है कहानी वाला, जिसमें सियार कौवे को गाने के लिए प्रेरित करता है, और जैसे ही कौवा गाता है कि उसकी चोंच से पूरी नीचे गिरती है, जिसे लेकर सियार नौ दो ग्यारह कर जाता है। एक तीसरा ढंग भी है उस बात को बयान करने का, जिसे "काशीका अस्सी" में बताया है लेखक काशीनाथ सिंह ने। पंचतंत्र की कथा के ब्याज से, वह "शिथिलौ च सुबद्धौ च" के माध्यम से।[3] बात वही है कि मौका पाते ही लोग कुर्सी पर बैठ जाना चाहते है, पर इस बात को बड़े कलात्मक ढंग से कहने का एक अन्दाज़ दिखाया लेखक ने। इसे ही नवीन अभिव्यंजना कहते हैं।

प्रेमी को अपनी प्रियतमा के कुंतलों से प्यार है। अब इस बात की कई अभिव्यक्तियों हो सकती हैं, जैसे ---

(1) तेरी जुल्फें बहुत सुंदर है, मन करता है रात-दिन उनसे खेला करूं।

(2) "तैरी जुल्फों से जुदाई तो नहीं मांगी थी
कैद मांगी थी रिहाई तो नहीं मांगी थी।"[4]

(3) "तेरी जुल्फों का अन्दाज़ कुछ एसा है
जब भी लहरों को देखा उनकी याद हो आयी।"[5]

अब यहां, एक ही बात कहने के तीन तरीके बताये हैं। यह अन्दाज़ और तरीका ही उसे नवीनता या नाविन्य प्रदान करता है। कोई भी लेखक या कवि

बिना प्रतिभा के नहीं होता। और प्रतिभा के लिए कहा गया है--- "नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।" अर्थात् प्रतिभा वह शक्ति है जिसके द्वारा लेखक या कवि नित्य-नवीन उद्भावनाओं को जन्म देता है।

प्रस्तुत अध्याय में हमारा प्रतिपाद्य यह रहेगा के कि हमारे आलोच्य तीनों उपन्यासकारों ने अपनी बात कहने के लिए भाषा में किन-किन नये औजारों से काम लिया है।

नवीन अभिव्यंजना-नया शिल्प

इधर का नया कथा-साहित्य न केवल वस्तु एवं परिवेश में नवीन जमीन को तलाशता है, बल्कि अभिव्यंजना के नये-नये क्षितिजों को भी उद्घाटित करता है। आज का कथाकार न केवल नये वैश्विक साहित्यिक प्रवाहों से परिचित रहता है, प्रत्युत नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं उसकी प्रगति से पूरी तरह से वाकिफ़ रहता है। उसकी इस वाकिफियत से जहां एक ओर उसका अनुभव-विश्व संपन्न व समृद्ध होता है, वहां उसकी यह संदर्भ-संपन्नता उसकी रचना, उसके उपन्यास को भी एक नवीन आयाम दैती है।

इधर उदयप्रकाश का एक उपन्यास आया है--- पीली छतरीवाली लड़की। इस पीली छतरीवाली लड़की अंजलि जोशी के पिता और भाई ठेकेदार हैं, बड़े सोर्सफूल हैं। जब उन्हें ज्ञात होता है कि राहुल और अंजलि परस्पर प्रेम करते हैं, तो उनका प्रचारतंत्र सक्रिय हो जाता है। राहुल का खर्चा तीन ट्युशनों पर चल रहा था। उसके बारे में अंट-संट बातें करके उसके दो ट्युशन बंद करवा दिए जाते हैं। वहां पर लेखक ने एक वाक्य दिया है--"इसका मतलब "क्रिटर्स" अब सक्रिय हो गये थे।"[6] अंग्रेजी की एक बड़ी चर्चित फिल्म थी----"क्रिटर्स"। उसमें योजनाबद्ध तरीके से एक विशिष्ट प्रकार के जंतु मानव-जात पर हमला करते हैं। इसके बाद लेखक कहता है, अलबत्त राहुल के शब्दों में----"अफ्वाह और झूठ का भारतीय इतिहास का सबसे बड़ा कारखाना उनके पास/ अर्थात् इन क्रिटर्स के पास/ था। जिस व्यक्ति या समुदाय को वे खत्म करना चाहते थे, एकजुट

होकर, एक साथ, वे उसके बारे में झूठ और अफ्वाह का अंबार खड़ा कर देते थे। शताब्दियों का आनुवंशिक प्रशिक्षण इसमें खूब काम आता था। ब्राह्मण ग्रन्थ और तमाम पुराण इस झूठ के प्रमाण थे। कुछ ही साल पहले अयोध्या में हुए बाबरी मस्जिद कांड के समय के तमाम हिन्दी के अखबार इसके प्रमाण थे।"[7] अभिप्राय यह कि आज का कथाकार अपने बिम्ब और प्रतीक न जाने कहां-कहां से चुनता है।

हमारे पहले उपन्यास "राग-दरबारी" के लेखक भी प्रयोगधर्मा उपन्यासकार हैं। अत: उनके इस उपन्यास में भी नया अभिव्यंजना कौशल स्थान-स्थान पर मिलता है। गयादीन की भैंस गरम हो रही थी। वस्तुत: देखा जाए तो यह "गरमायी हुई भैंस" उनकी लड़की का ही प्रतीक है। भैंस गरम हो रही है और भैंसे का प्रबंध हो नहीं रहा है। इसका लेखक ने बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण किया है--"भैंसे ने इस बार खूंटे से कुछ दूर आकर ऐसा रोक-एण्ड-रोल दिखाया कि लगा अब भैंसे की जगह एल्विस प्रिस्ले को ही बुलाना पड़ेगा।"[8] हिन्दुस्तानी आदमी की प्रकृति का चित्रण करते हुए लेखक कहते है-- राबिन्सन क्रूसों की बजाय कोई हिन्दुस्तानी किसी एकान्त द्वीप में अटक गया होता तो फ्राइडे की जगह वह किसी पान बनाने वाले को ढूंढ निकालता। वास्तव में सच्चे हिन्दुस्तानी की यही परिभाषा है कि वह इंसान जो कहीं भी पान खाने का इन्तजाम कर ले और कहीं भी पेशाब करने की जगह ढूंढ ले।"[9]

एक स्थान पर सड़क के दोनों किनारों पर कुछ प्रौढ़ और तर्जुबेकार महिलाएं निबटने के मतलब से कतार बांधकर बैठी थीं। प्रिंसिपल साहब और रंगनाथ प्रात:कालीन भ्रमण के उद्देश्य से निकले थे। इन दोनों को देखकर वे महिलाएं खड़ी हो जाती हैं। इस संदर्भ में लेखक की टिप्पणी है-- "इन दोनों को देखकर वे महिलाएं पाखाने की कार्रवाही को एकदम स्थगित कर सीधी खड़ी हो गयीं और उन्हें "गार्ड ओफ आनर" जैसा देने लगीं।"[10]

यहां महिलाओं की उस क्रिया को लेकर "गार्ड आफ ओनर" जैसी शब्दावली स्थिति को व्यंग्यात्मक बनाने के लिए है। इस तरह की शब्दावली के

अंकन के कारण लेखक को "संवेदन-हीनता", "सतहीपन", "ग्रामीण-संस्कृति का उपहास", "हास्य-व्यंग्य की अति" जैसे आरोपों के कठघरे में खड़ा किया गया है और कई प्रमुख आलोचकों ने उपर्युक्त आरोपों का उल्लेख किया है।[11] मसलन डा.नित्यानंद तिवारी ने प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में "व्यंग्य-दृष्टि या व्यंग्य-लीला"[12] कहते हुए लिखा है-- "राग-दरबारी" में वर्णन का ढब इतना छाया हुआ और एकरुप है कि ३०-४० पृष्ठों में ही वह फार्मूलेबाजी लगने लगता है।"[13] परंतु इसके संदर्भ में स्वयं लेखक अपनी दृष्टि या "विज़न" को स्पष्ट करते हैं कि वे ग्रामीण जीवन को लेकर "अहा। ग्राम्य-जीवन भी क्या है" वाली "मिथ" को तोड़ना चाहते हैं। आज़ादी के बाद ग्रामीण जीवन में जो मूल्यगत परिवर्तन हुए हैं उससे लेखक व्यथित हैं और यही व्यथा "दर्द का हद से गुजर जाना, दवा हो जाना" के न्याय से वह उपहास पर उतर आते हैं। यह उपहास भी उनके आंतरिक द्वन्द्व का ही परिणाम है।[14]

एक स्थान पर लेखकीय टिप्पणी है--"आज का दिन अड़तालीस घण्टे का है।"[15] यह विधान प्रकृत्या गलत है। परंतु उसके ध्वनिगत अर्थ कई-कई हो सकते हैं। मसलन यों दिन अड़तालीस घण्टे का नहीं हो सकता। यह बिलकुल असंभव है। परंतु आजादी के बाद लुटेरों ने साहूकार के बाने में इस देश को इतना लूटा है कि कुछ भी हो सकता है। रीतिकालीन कवि धनानंद कहते थे--"झिझकै कपटी जे निसांक नहीं।"[16] परंतु अब तो चक्र ही उल्टा हो गया है--" जो सच्चा है, ईमानदार है, उसे ही झिझकना है, उसे ही डरना है। कपटी और षडयंत्रकारी बेखौफ़ – बेखटके जी रहे है। वैसे चौबीस घण्टो में कुछ सीमित काम ही हो सकता है, पर ये सांड तो अड़तालीस घण्टे का काम कर डालते हैं। दिन को रात और रात को दिन साबित कर सकते हैं।

स्थितियों में कोई खास अंतर नहीं आया है। सांड़ तब भी बेखौफ़ थे और आज भी है। एक दोहा स्मृति में उभर रहा है--

"जो पहले होता रहा, अब भी वोही हाल।

आखिर चिड़िया क्या करै, डाल बने हैं जाल।"[17]

ग़रीब आदमी कहां जाए? क्या करें? जिसे वह "डाल" (आश्रय –स्थान) समझता है, वही जाल प्रमाणित होता है। क्योंकि "वैद्यजी थे, हैं और रहेंगे।"[18] एक वाक्य में कितना कुछ कह दिया गया है।

सुरेन्द्र वर्मा द्वारा प्रणीत उपन्यास "मुझे चांद चाहिए" भी प्रयोगधर्मी उपन्यास है। उसमें भी भाषा को लेकर, नये प्रतीकों को लेकर कई प्रकार के प्रयोग किए गए हैं। वर्षा वसिष्ठ में अभिनेत्री होने की काफ़ी संभावनाएं हैं, इस तथ्य को साक्षात्कार समिति में बैठे हुए नाट्य-समीक्षक एक ही वाक्य में बता देते हैं-- "प्लेन जेन के बारे में आपका क्या विचार हैं?[19] इसे वही समझ सकता है जिसे "प्लेन जैन" के बारे में कुछ मालूमात हो। वर्षा एक "अनकट डाइमण्ड" है, उसे तराशने की जरुरत है, बिलकुल "प्लेन जेन" की तरह।

अमूमन रुप से नपोलियन का वह वाक्य जग-प्रसिद्ध है-"इम्पोसिबल इज द वर्ड इन द डिक्शनरी आफ फूल्स।" अर्थात् असंभव शब्द मूर्खों के शब्दकोश में होता है। प्रशिक्षण के प्रारंभ मे ही डा.अटल वर्षा को एक काम सौंपते है-"वर्षा, कल शाम पांच बजे तुम मुझे "मिट्टी की गाड़ी" (मृच्छकटिकम--शूद्रक) की वेशभूषा के स्केच दिखा रही हो।"[20] वर्षा को पहले तो यह काम असंभव लगा। डा.अटल उसे चार-पांच किताबें थमा देते हैं। वर्षा देर रात बैठकर ये सब काम करती है। दूसरे दिन अपना लंच भी फक्त दश मिनट में खत्म करती है और ठीक पांच बजे डा.अटल जब उसके कमरे में प्रसिष्ठ होते हैं, तब वर्षा की फाइल देखकर वे ढाई सूत की मुस्कान के साथ कहते हैं---"जो शब्द नेपोलियन के शब्दकोश में नहीं था, वह वर्षा वसिष्ठ के शब्दकोश में क्यों हो?"[21]

उपन्यास में संस्कृत नाट्य-साहित्य, संस्कृत महाकाव्य साहित्य, विश्वसाहित्य, अंग्रेजी साहित्य, होलीवुड और बोलीवुड़ के इतने संदर्भ मिलते हैं

कि आलोचकों ने उसे "संदर्भ-संपन्नता" का उपन्यास कहा है।[22] निम्नलिखित परिच्छेद देखिए-

"मेरे जीवन के तीसरे पृष्ठ (मिट्ठू और हर्षवर्धन के बाद) मास्को आर्ट थियेटर के 1898 के प्रदर्शन में नीना की भूमिका एम.आई रोक्सानोवा ने की थी। पता नहीं, तुम्हें वह कैसी लगी। क्षमा करना, मैं उसकी तस्वीर से प्रभावित नहीं हुई। मुझे 1968 के प्रदर्शन में नीना के रुप में एस.आई.कोर्कोश्को ने मुग्ध कर दिया। उसकी देहयष्टि, नैन-नक्श और भाव-भंगिमाएं बहुत सलोनी और प्रभावी लगीं। विशेषकर बड़ी-बड़ी वेधक आंखें-- (सूचनार्थ निवेदन है कि अपने खंजन-नैन भी किसीसे कम नहीं।)--एंटन पावलोविच, सच-सच बताना, ओल्गा निपर में तुमने क्या देखा, जो वह तुम्हारी प्रेमिका भी बनी और पत्नी भी? उस छुटकी, मुटल्ली में ऐसा कुछ नहीं, जो उसे श्रैष्ठ अभिनेत्री बनाये।"--पूर्वाभ्यास के दौरान जब सिलबिल ने वर्षा ने कल्याणी को बधाई देते हुए पूरी संजीदगी से कहा--"तुमने ओल्गा निपर को पीछे छोड़ दिया है।" तो अनेकानेक भौचक्के रह गये। (डा. अटल ने पीछे मुड़कर अपनी सूक्ष्म मुस्कान छिपा ली)[23]

वर्षा को चेखव का ओब्शेसन है। लखनऊ-यात्रा के दौरान मिट्ठू ने उसका प्रथम चुंबन लिया था। उसके बाद दिल्ली में हर्ष वर्षा को चूमता है। इसलिए वर्षा चेखव को अपने जीवन के तीसरे पृष्ठ के रूप में संबोधित करती है। "सच सच बतलाना" में नागार्जुन की कविता "कालिदास के प्रति" की पंक्तियां "कालिदास सच सच बतलाना अज रोये या तुम रोये थे" की मुद्रा है, अत: यहां कई कवियों का प्यारा ऐसा मुद्रा अलंकार सहजतया आ गया है।

"काशी का अस्सी" एक व्यंग्य व राजनीतिक उपन्यास है। बनारस रांडो, सांडो और संन्यासियों के लिए विख्यात था पहले और कुछ मायनों में अभी भी है। इनमें से एक अर्थात् सांड पर शिवप्रसादजी की टिप्पणी सुनिए-"देखिए तो पहले हर गली, सड़क, चौराहे पर सांड। सही है कि पहचान थे बनारस के। न राहगीरों को उनसे दिक्कत, न उनकों राहगीरों से। अत्यन्त शिष्ट,शालीन, धीर-गम्भीर, चिंतनशील। न उधो का लेना न माथो का देना। आपस में लड़ लेंगे,

लेकिन आपको तंग नहीं करेंगे। बहुत हुआ तो सब्जी या फल के ठेले में मुंह मार लिया बस। वह भी तब देखा कि माल है लेकिन लेनदार नहीं। आप अपने रास्ते, वे अपने रास्ते। वरना बैठे हैं या चले जा रहे हैं, किसीसे कोई मतलब नहीं। मन में कोई वासना भी नहीं। गायों के साथ भी राह चलते कोई छेड़खानी नहीं। हां, भूख से कोई बेहाल आ गयी हो तो तृप्त कर देंगे। निराश नहीं लौटने देंगे। "इस पर ब्रह्मानंदजी की टिप्पणी देखिए- "यह आप अपने बारे में बोल रहे है या सांड़ो के बारें में?"[24]

कैथरीन बनारस पर रिसर्च कर रही है। वह एक स्थान पर कहती है- "वाराणसी इज डाइंग।" इस पर गया सिंह बिगड़ जाते हैं, पर जो बात करते हैं कायदे की। वह अमरीकन डालर की बात करते हैं। कहते हैं - "डालर अमरीका की जीभ है। वह शुरु में ऐसे ही किसी मुल्क को चाटता शुरू करता है जैसे गाय बछड़े को चाटती है- प्यार के साथ! बाद में जब चमड़ी छिलने लगती है, खाल उघड़ने लगती है, दर्द शुरु हो जाता है, जीभ पर कांटे उभरते हुए दिखाई पड़ने लगते हैं, जबड़े चलने की आवाज़ सुनाई पड़ती है तब पता चलता है कि यह जीभ गाय की नहीं, किसी और जानवर की है। और क्या समझते हो, जो देखते-देखते देश का देश चबा गया हो और उसमें भी सोवियेट रूस जैसा देश- उसके लिए नगर का मुहल्ला क्या चीज है?"[25] अमरीका की शोषण-नीति के लिए उन्होंने गाय और बछड़ा का प्रतीक बिलकुल सही चुना है।

इसी तरह एक स्थान पर पौराणिक संदर्भ का उन्होंने बड़ा ही सार्थक प्रयोग किया है। ऊपर वाली बात के संदर्भ में डा. गया सिंह कहते हैं--"है हमारी हैसियत एक बार भी अमेरिका जाने की? हमारा घर उनका घर है, लेकिन उनका घर उन्हीं का घर है, हमारा-तुम्हारा नहीं। - थोड़े दिन बाद ही ये बोलेंगे--- अस्सी जर्जर हो रहा है, ढह रहा है, मर रहा है, हमें दे दो तो नया कर दें-- एकदम चमाचम। कल बनारस को चमकाएंगे, परसों दिल्ली को ठीक कर देंगे, नरसों पूरे देश को गोद ले लेंगे और झुलाएंगे-खिलाएंगे अपनी गोदी में। यह बाद में पता चलेगा कि हम किसकी गोद में है - जसोदा मइया की कि पूतना की।"[26]

अभिप्राय यह है कि तीनों उपन्यासों में लेखकों ने अपने-अपने ढंग से नवीन अभिव्यंजना और भाषाई शिल्प का प्रयोग किया है।

भाषा में नवीन उपमानों का प्रयोग:

हर लेखक अपनी बात को निराले ढंग से कहने के लिए सदैव नये उपमानों की तलाश और तराश में रहता है। नये उपमान से एक ताज़गी आ जाती है। अज्ञेयजी की एक कविता स्मृति-सागर पर तरंगायित हो रही है--

"अगर मैं तुमको (ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका) अब नहीं कहता या शरद के भोर की नीहार-न्हायी कुंई, (टटकी कली चम्पे की) वगैरह, तो (नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है) या कि मेरा प्यार मैला है। (बल्कि केवल यही) ये अपमान मैले हो गए हैं। (देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच) कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।"[27]

यहां पर अज्ञेय काव्य-जगत की एक सच्चाई सामने ला रहे हैं। कई बार प्रयोगाधिक्य से अच्छे-से अच्छा शब्द अपना अर्थ खो बैठता है। उसका असर समाप्त हो जाता है। जैसे जिन्दगी को हमेशा नये रास्तों की तलाश रहती है, ठीक वैसे ही साहित्य में भी नये प्रयोगों की जरुरत रहती है। माना कि उपन्यास की भाषा गद्य की भाषा है। पर क्या गद्य में कविता नहीं होती। बहुत से लोग निर्मल वर्मा, रमेश बक्षी, मोहन राकेश आदि के उपन्यास कथा-रस के लिए नहीं, अपितु उनमें अभिव्यक्त-अभिव्यंजित कविता के लिए पढ़ते हैं। मतलब कि उपन्यास की भाषा को सरस लालित्यपूर्ण बनाने के लिए उपन्यासकार भी अपनी भाषा में नये-नये उपमानों का प्रयोग करते रहते हैं। यहां हमारा उपक्रम हमारी आलोच्य उपन्यास-त्रयी में इस तरह के प्रयोगों के छानबीन की रहेगी।

डा. पारुकान्त देसाई ने अपने एक आलेख में "राग-दरबारी" उपन्यास की भाषिक-संरचना के संदर्भ में उपन्यास में आये हुए नये उपमानों को इस तरह रखा है -

शहर का आदमी = सूअर का लैंड; असमर्थ व्यक्ति पर कुछ दायित्व का आ जाना = गिलहरी के सिर पर महुआ गिरना; नौकरी या पद में लगा हुआ

आदमी = गोह; मारना-पिटना = भरत मिलाप कराना; लटका हुआ मुंह = झोला; बहुत दिन से मनमें रमती हुई बात को कह देना = पेट का साफ हो जाना; वर्तमान शिक्षा-पद्धति = रास्ते में पड़ी हुई कुतिया; मुनक्का = बकरी की लेंडी; गले के नीचे के दो ऊंचे-ऊंचे पहाड़ = उरोज; किसी पढ़े-लिखे आदमी का शहर से गांव आना = हाराकीरी; क्रान्ति = दुम हिलाती कुतिया ; गाली = आत्माभिव्यक्ति का जनपि, य तरीका ; जनता = घास-कूड़ा; चुटिया = आसमानी बिजली से शरीर की रक्षा करने वाली वस्तु ; दरखास्त = चींटी की जान ; नैतिकता = कोने में पड़ी हुई चौकी ; बहादुर = जो बैल को भी दुह लावें ; मिठाई और पूड़ी की दुकान = गन्दगी-प्रसार योजना को प्रोत्साहन देनेवाली अखिल भारतीय संस्था; देहाती बच्चा = धूल, काजल,लार, कीचड़ और थूंक का बंडल; शाम की हवा = गर्भवती स्त्री ; सदाचारी व्यक्ति = गोश्त और शराब को नहीं कहनेवाला आदमी आदि-आदि।[28]

उपन्यास के रूपबन्ध को देखते हुए ये अपमान भी व्यंग्यात्मक और कहीं-कहीं हास्य उत्पन्न करने वाले हैं।

ठीक उसी तरह सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास "मुझे चांद चाहिए" में भी हमें ऐसे कई नये उपमान उपलब्ध होते हैं। कुछेक को नीचे सूचीबद्ध किया गया है--

(1) विषय पर का अधिकार साथ-साथ चलना = लक्ष्मी के साथ समृद्धि का चलना; (2) चेहरे पर की लज्जा = बीरबहुटी; (3) समय का थम जाना = फ्रीजिंग; (4) आत्महत्या = जगत-विसर्जन ; (5) वर्तमान = रक्तपात से सना मांस का लोथड़ा; (6) किसी में नयी संभावनाओं का उग निकलना = निकलना आइसबर्ग का; (7) वर्षा के बड़े भाई महादेव का वर्षा के प्रति व्यवहार = हांके के पशु की तरह खदेड़ा जाना; (8) खालीपन महसूस करना = किसी आत्मीय का दाह-संस्कार करके लौटना; (9) प्रश्न=बंदनवार; (10) हर्षवर्धन= कविकुल-गुरु के सर्वश्रेष्ठ टीकाकार; (11) जिन्दगी=एक उलजुलुल नाटक; (12) रीटा साहनी का पति सुकुमार = पीटा हुआ पिल्ला; (13) उन्मुक्त हंसी= मुद्दत से बंध पंछी का यकायक मुक्त होना; (14) अचानक किसी बात का

सामने आना = पानी की शान्त सतह पर कंकड़ का गिरना; (15) वर्षा के लिए फिल्म का पहला टेइक = मेले में खोये बच्चे-सा अहसास; (16) रिपर्टरी के प्रबंधक सूर्यभान = रंग-अजगर; (17) रिपर्टरी = बाबी; (18) मास्टर-सीन के बाद का वर्षा का अहसास = अनुरागी जनों को निर्मल सुगंधित जल, धुले हुए भवन का तल और मनोहरी वीणा के गीत मिल गये हों; (19) चेखव = वर्षा के जीवन के तीसरे पृष्ठ; (20) अनिश्चित संदेह = धुन; (21) प्रेम = गुड रिक्रिएशन; (22) सुजाता के लिए हर्ष का वजूद = कांच के टुकड़ों पर पांव पड़ जाना; (23) वर्षा का सिल्वर-सेंड के सामने ओटो से उतरना पांडेजी के लिए = इन्द्र का ऐरावत के बदले नंदी से उतरना; (24) पपी (कुत्ता या कुतिया) के बिना स्टार = बिना मंगलसूत्र के सुहागिन; (25) वर्षा के सामने सूर्यभान के पांवों का कांपना = किशनलाल के सामने आलीवियर का आ जाना; (26) वर्षा के गले से पपी का मुंह टीका लेना = धनुष चढ़ाए धनुष को देखकर हिरनी का आश्रम की तापसी की बाहों में सिमट जाना; (27) झुमकी जब कुरुबक के लिए मिसेज डिसूजा का सजेशन देती है तब वर्षा का उसको देखना = कुरुक्षेत्र में अक्षौहिणी सेना के सामने कंधे पर गांडीव टांगे किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को मानो मार्गदर्शन मिल गया हो; (28) झल्ली का ब्याह = अपंग सहयात्री से मुक्ति पा लेना; (29) वर्षा के पिता की कर्मकांडी मान्यताएं = शंकर और जनक के धनुष की दृढ़ता; (30) झल्ली और नैनरंजन की जोड़ी = वन-ज्योत्स्ना लता और आमवृक्ष आदि-आदि।[29]

यहां पर जो उपमान चुने गए हैं वे उपन्यास के परिवेश के अनुरुप है। उपन्यास का परिवेश नाट्य-जगत और फिल्म-जगत से संलग्नित है, अत: उसमें इन-इन क्षेत्रों के उपमानों का आना सहज ही होगा। दूसरे वर्षा के पिता संस्कृत के अध्यापक और कविकुलगुरु कालिदास के परम भक्त हैं और गरीब होते हुए भी पूरी कालिदास-ग्रन्थावली उनके पास है, अत: वर्षा का भी संस्कृत का बैक-ग्राउण्ड बड़ा तगड़ा है। तीसरे एन.एस.डी. में जिन नाटकों को पढ़ाया और मंचित किया जाता है, उनमें भी संस्कृत नाटक होते थे। स्वयं वर्षा ने "अभिशप्त

सौम्यमुद्रा" से ही अभिनय-क्षेत्र में पदार्पण किया था। इसके बाद "मृच्छकटिकम" आदि का भी उल्लेख उपन्यास में आया है। रघुवंश, कुमारसंभव, मालविकाग्निमित्र आदि के संदर्भ भी आए हुए हैं। अत: इन क्षेत्रों से उपमानों का आना स्वाभाविक है।

तीसरा उपन्यास है, "काशी का अस्सी"। उसमें आये हुए नये उपमान इस प्रकार हैं--(1)अस्सी से धूमिल का उठ जाना---उसका निधन हो जाना = आंगन से बेटी का बिदा होना; (2) कांग्रेस = बुझे हुए हुस्न का हुक्का (3) भांग का प्रोग्रेम = व्यवस्था; (4) दारु का प्रोग्रेम = कार्यक्रम; (5) सेमिनार या परिसंवाद बुद्धिजीवियों का = गंडऊ-गदर; (6) ग्रामीण लोगों के वोट = चुनाव जीतने की मास्टर की; (7) डालर = अमरीका की जीभ; (8) अमरीका की गोद में बैठना = पूतना की गोद में बैठना ; (9) ड्रायवर की जिन्दगी = हंसी और खेल; (10) कमर में गमछा, कंधे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ = अस्सी का यूनिफोर्म; (11) जमाने को...पर रखकर मस्ती से घूमने की मुद्रा = अस्सी का आइडेंटिटी कार्ड, (12) अस्सी की नागरिकता का सरनेम = गुरु ; अस्सी = अष्टाध्यायी; (13) बनारस = उस अष्टाध्यायी का भाष्य । (यहां उपमान उलट गया है। वास्तव में मूल-ग्रन्थ और भाष्य में मेल ग्रन्थ पहले आता है। इस दृष्टि से बनारस पहले और अस्सी बाद में आना चाहिए , परंतु यहां उनका विपर्यय हो गया है जो इसकी विशेषता है।) (14) लेट्रिन जाना = दिव्य निबटान; (15) अस्सी का सुलभ शौचालय = व्हाइट हाउस आदि-आदि ।[30]

भाषा में नवीन रूपकों का प्रयोग:

उपमा और रूपक में अंतर यह है कि उपमा में दो वस्तुओं की तुलना की जाती है और रूपक में उन दो वस्तुओं में अभिन्नता स्थापित की जाती है। "उपमा" शब्द का अर्थ है "उप" अर्थात् समीप और "मा" अर्थात् निर्णय करना या तौलना।[31] और किसी भी वस्तु को तौलने के लिए कम-से-कम दो वस्तुओं का होना जरुरी है। अलंकारशास्त्र में इन्हें उपमेय और उपमान कहा जाता है।

जिस वस्तु को उपमा दी जाती है उसे "उपमेय" कहते हैं, और जिससे उसकी तुलना की जाती है उसे "उपमान" कहते हैं। उदाहरणतया यदि कहा जाए कि "जीवन तो महासागर जैसा है।" तो यहां पर जीवन उपमेय और महासागर उपमान कहे जायेंगे। बजाय इसकें यदि ऐसा कहा जाए कि "जीवन-सागर से जूझना तो पड़ता ही है", तो यहां पर "जीवन" और "सागर" को अभिन्न बताया गया है। हमारा साहित्य हजारों साल पुराना है। अत: हमारे बहुत-से उपमान और रूपक अब रुढ़ हो गए हैं। पारंपरिक हो गए हैं। तुम्हारी आंखे हिरनी जैसी है, ऐसा यदि हम कहते हैं तो उस अभिव्यक्ति में कोई नाविन्य नहीं होगा, परंतु यदि कहा जाए कि तुम्हारी आंखे "आल्कोहोलिक" है तो उसमें एक नवीनता का अनुभव-आनंद होगा। इधर के उपन्यासों में आंखों के लिए निम्नलिखित उपमान मिलते हैं-- सोडा वोटर की गोलियां, नीले बटन, दुग्ध के सरोवार में डूबती-उतराती हुई दो गहरी नीली गोलियां, सपनों की खोलियां, मकान की दो छोटी-छोटी खिड़कियां।[32] इन नवीन उपमानों के कारण भाषा में एक विशिष्ट प्रकार की नज़ाकत और नफ़ासत आ गयी है। इसी तरह यदि नवीन रूपकों का प्रयोग किया जाए तो उससे भाषा में एक नयी महक आ जाती है। हमारे आलोच्य उपन्यासों में विषय-वस्तु और चरित्र की सज्जता तो है ही, उनमें भाषागत यह नज़ाकत व नफ़ासत भी है। यहां तीनों उपन्यासों में जो नवीन रूपक आए हैं उनको रेखांकित करने का प्रयत्न हुआ है--

प्रथमत: हम "राग-दरबारी" उपन्यास के नये रूपकों को प्रस्तुत कर रहे हैं-

(1)देहात का महासागर; (2) बातों के बतासें; (3) गालियों का भोज; (4)पालक-बालक; (5) तबादले का शाप; (6) बेवकूफ़ी का रोग; (7)पलायन-संगीत; (8) प्रोपेगेण्डा की तलवार (9) सरताजे बांगडू आदि-आदि।[33]

"राग-दरबारी" की तुलना में "मुझे चांद चाहिए" उपन्यास में नये रूपक अधिक मिलते हैं। यथा--

(1) सम्मान का रेड कार्पेट, (2) सवालों का डंक, (3) उदासी की आंच, (4) भावनाओं के बटन, (5) बेगानेपन की चूंगी, (6) आत्मरति का सिंहद्वार, (7) दाम्पत्य-शैया, (8) मौन के पहाड़, (9) सांस्कृतिक धृतराष्ट्, (10) सौन्दर्य बोधीय आधार, (11) सौन्दर्यबोधीय मूल्यांकन, (12) सम्भ्रान्त वर्ग की मलाई, (13) प्रतिशोध का डंक, (14) संस्कृति-सरोवर, (15) प्रतियोगिता का प्रेत, (16) कर्तव्य की वल्गा, (17) अंधेरों का तोहफा, (18) कच्ची उम्र का जोकर, (19) भावना की लगाम, (20) मुस्कानों की उदासीनियां, (21) विषाद के इन्द्रधनुष, (22) कान्टेक्ट का मायाजाल, (23) संभावनाओं का आकाश, (24) घड़ी की शहनाइयां, (25) हिसाबों का जोड़-तोड़, (26) सवालों की चिनगारियां, (27) वर्तमान की उंची प्राचीर, (28) उपालंभों का बस्ता, (29) अपरिचय के सह्याद्री, (30) सम्मान-पैमाना, (31) गोसिप-ग्लोसीज, (32) अहं के चटखारे, (33) सिनेमा का दलदल, (34) ब्लेक पीरियड के छाले, (35) अतृप्त आकांक्षाओं का कोल्ड स्टोरेज, (36) कांइयापन के कांटे आदि-आदि।[34]

"राग-दरबारी" की भांति "काशी का अस्सी" में नये रुपकों की संख्या अधिक नहीं है। गिने-चुने चार-पांच नये रुपक मिलते हैं, जो इस प्रकार है--

"हुस्न का हुक्का खैनी की खिल्ली, डालर रुपी जीभ, अमरीका रूपी पूतना की गोद, थिंक-टैंक।"[35]

विशेषण-विपर्यय:

यह एक प्रकार का अलंकार भी है। अंग्रेजी में इसे "Transferred Epithet" कहते है। जहां किसी कथन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए विशेषण का विपर्यय कर दिया जाता है, वहां इस अलंकार की सृष्टि होती है। प्रसादजी की एक काव्य-पंक्ति है--"निर्दय ऊंगली अरी ठहर जा, पल भर अनुकंपा से भर जा।" [36] यहां विशेषण का विपर्यय हुआ है। "ऊंगली" अपने-आप में निर्दय नहीं हो सकती। किसी व्यक्ति की हो सकती है। पर कथन को

प्रभावशाली बनाने के लिए कई बार ऐसा किया जाता है। छायावादी कवियों की यह विशेष प्रवृत्ति रही है। इसे सरल शब्दों में समझना हो तो यों कह सकते है कि "ऊंगली" के आगे विशेषण रखना हो तो छोटी, बड़ी, काली, गोरी, टेढ़ी आदि विशेषण रख सकते हैं, पर ऐसा न करते हुए कवि ने एक ऐसा विशेषण उसके आगे रखा जिसे हम विचित्र या अनोखा कह सकते हैं। अर्थात् जहां-जहां साधारण या पारंपरिक विशेषणों का प्रयोग न करके कुछ नये प्रकारों के विशेषण रखे जाएंगे वहां-वहां इस अलंकार की सृष्टि हो सकती है। अर्थात् विशेषणों के नये प्रयोग को विशेषण-विपर्यय कहा जाता है। इससे भाषा में एक नयापन, एक ताजगी का जाती है।

इधर के उपन्यासों में विशेषण विपर्यय या विशेषण के नये प्रयोग विशेष रुप से श्रुतिगोचर हो रहे हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं--मटमैली याद, बर्फीला ठण्डापन, दस्तक देता हुआ अतीत;[37] निगलता हुआ सूनापन, संगीतपूर्ण तटस्थता, सुरमई उजाले, इण्टेलेक्चुअल मित्रता, निंदियायी हुई आवाज़;[38] लड़किनान चेहरा, ठण्डी फुसर्त, ऐयाश अंदाज, गुलमोहरी शरीर, कुंआरा सुख, बियाबान निर्लिप्तता, आवारा मन:स्थिति, बुजुर्ग हवाएं, मरा हुआ वाक्य;[39] बांझ आंखे, आंखों में जल गए घास की-सी दहशत, खट्टे हाथ, गुनगनाती निगाह, सपनीले कपड़े. पनीले वक्ष, चेहरे पर आत्मादर की लुनाई, गरमाती आंखें;[40] आदि-आदि। इन प्रयोगों से भाषिक लुनाई में कई गुना वृद्धि हो जाती है।

आलोच्य उपन्यासों में आगत विशेषण-विपर्यय के प्रयोगों पर विचार करेंगे। इनमें अब ऐसे प्रयोग सर्वाधिक रुप से "मुझे चांद चाहिए" में उपलब्ध होते हैं, अत: सर्वप्रथम उन्हें सूचीबद्ध किया जा रहा है।-----

"घिसा-पीटा-सा दकियानूसी नाम, गगनचुंबी मांग, कालीमन: स्थिति, थरथराती अवधि, मखमली पलायन, अपरिभाषित आनंद, भावात्मक निर्भरता, सौन्दर्यबोधीय संतोष, भावात्मक मुक्ति, नग्न सच्चाइयां, निर्णायक संध्या, सिनेमायी व्याकरण, व्यग्र चुंबन, तन्मय चुंबन, भोलीभाली कंचुकी, नुकीला मौन, सांस्कृतिक धृतराष्ट्र, ठोस हदबंधी, नाटकीय समक्षता, पैदायशी खानाबदोश,

सवालिया निगाह, उद्धत तर्कशीलता, मद्धिम ईर्ष्या, उदास मुस्कान, मुलायम पति, झेंपी मुस्कान, व्यावसायिक संभावना, धुंधलाया चांद, लव-सीट, मीठा अंधेरा, भावात्मक शून्य, तीखी मजबूरी, सुलगता सवाल, पुलक भरी आश्वस्ति, आसन्न संकट, पुरपेच गलियारे, स्वप्निल मुस्कान, रचनात्मक संतोष, बोझिल मौन, वन टेक आर्टिस्ट, सर्द तिरस्कार, करुण कशमकश, सुगबुगाता धुआं, वीतराग-सी संतुष्टि, कलात्मक फांसी, भावात्मक ऊहापोह, कलात्मक जरुरतें, क्षणीय विश्लेषण, मुस्कानहीन रुख, स्वप्न को बांटने का गर्व, आपराधिक बरबादी, बहुस्तरीय असंतोष, सिनेमास्कोपी सपने, नुकीला गूढ़ार्थ, पारिवारिक पुछल्ले, थरथराती हुई भावना, ग्लेमर-ज्वर-पीड़ित गंवई शिक्षण-प्रणाली, शोर्टकट खोजियों, लिंगीय दंभ, सर्पीली नदी, अनुरागभरी चुहल, सोफिस्टिकेटेड जुबान, गलाजतभरी नाली, आक्रामक आहटें, बौराई गूंज, दहशतनाक अहसास, बौनी क्षमता, सदाबहार सवाल, नामालूम-सी उदासी आदि-आदि।[41]

"राग-दरबारी" में भी कुछ विशेषण विपर्यय के उदाहरण मिलते हैं, यथा- ---नृशास्त्रीय बहस, हत्याभिलाषी ट्रक, चिरैयामूतन बौछार, अवकाशप्राप्त ब्रश, लुचलुचाया व्यक्तित्व, गंजही बोली, बातों के बताशे, राहचलन्तू विद्या, कौडिल्ला न्याय, ताजा जवान, नपुंसक भाषा, विशेषज्ञोंवाली प्रेक्टिस, कार्तिकी-कुतिया, बौद्धिक-गुटबंधी, बहुमूत्रीय रोग, आदि-आदि।[42]

"काशी का अस्सी" अस्सी के लोकेल पर आधारित उपन्यास है, अतः उसमें कुछ इसी ढंग के, बनारसी रंग के विशेषण-विपर्यय आये हैं, जो इस प्रकार हैं-

"मेढ़िया-पहलवान (वी.पी.सिंह:), भंगाचार्य प्रोफेसर, यादव-शिरोमणि खोज, गैर-लाइसेंसी बाजा (तमंचा), गदहे के फोद से लिखा भाग्य, राजनीतिक दोमुंहापन, दिव्य खिलान, बकलंड अहिर, बौड़ियाया देश, औड़िहार कुक्कुर लंडबहर लेखक, किडी कोन्वेण्ट, प्रजातियों की खदान (अस्सी), जमीनी हाउसबोट, मालिशिया पेशा, पोएट लोरियेट आफ अस्सी, मयभा महतारी,

मनुष्यभक्षी चोर (अमरीका), अड़भंगी बाबा, निरुद्देश्य निरर्थक हंसी, निछट्दम सन्नाटा आदि-आदि।[43]

असाधारण क्रियारुपों का प्रयोग:

"असाधारण क्रियारूप" से हमारा तात्पर्य उन क्रियारुपों से है जो साधारणतया नहीं पाए जाते हैं। मसलन चलना, फिरना, बोलना, खाना, पीना, दौड़ना आदि क्रियारुप सामान्य है, परंतु "बतियाना", "गरियाना", "कुर्सियाना", "सठियाना" जैसे क्रियारूपों को हम असाधारण कहेंगे। कोई व्यक्ति यदि किसीको कहता है कि "तुम अब बूढ़े हो गये हो" तो इस कथन में कोई खास बात नहीं होगी, परंतु यदि कोई कहे कि, "चचा, अब तुम बुढ़ियाय गये हो" या "सठिया गये हो" तो इस कथन-रीति में कुछ विशिष्टता का समावेश हो जाता है। यहां हमारा उपक्रम हमारे तीनों आलोच्य उपन्यासों से इस प्रकार के क्रिया-रुपों को रखना है----

"टिप्पस में होना (किसी फिराक में होना), फुस फुसाना, ठिल्ले मार-मारकर हंसना, टांय-टांय करना, टिपिर-टिपिर करना, ठांय करना (निहायत फालतू बात करना), फांय-फांय करना, लड़ास पूरी करना, टिलटिलाना, कुकुरहाव करना (चोर-चोर करके बेकार में लोगों को परेशान करना), बंदरहाव करना (पत्नी के साथ झगड़ा करना), बालों का तेल से चुचुआना, कंटाप पड़ना (कान के नीचे खींच के देना), फंटूशी का पिल्ल से निकल पड़ना, चांय-चांय करना (बकवास करना), घसड़-फसड़ हो जाना (किसी दूसरे की स्त्री से सम्बन्ध हो जाना), गिचिर-पिचिर में पड़ना (दूसरों की पंचायत में पड़ना), भुनभुनाना, सिलिर-सिलिर करना, हथियाना, फाइलेरिया करना, तुम-तड़ाक करना (अबे-तबे की भाषा में बोलना), इज्जत फींचकर रख देना (इज्जत का फालूदा बना देना), इस्कीम का मस्किया जाना (चूक जाना', फेल हो जाना), तिड़ीबाजी चलाना (चालाकी करना), बधिया जाना, लपलपाना आदि-आदि।"[44]

यहां हम देख सकते हैं कि "राग-दरबारी" में इस तरह के जो क्रिया रुप मिलते हैं, उनमें ज्यादातर सहातक क्रिया के साथ आये हैं, स्वतंत्र रूप से नहीं। "बतियाना", "गरियाना" आदि स्वतंत्र रूप है, पर "कुकरहाव करना", "बंदरहाव करना", या "टिपिर-टिपिर करना" आदि में दूसरी सामान्य क्रिया की सहायता लेनी पड़ी है। इनमें से कुछेक की गणना तो हम नये मुहावरों के अंतर्गत भी कर सकते हैं जैसे "लड़ास पूरी करना","किसी की गिचिर-पिचिर में पड़ना", "किसी की इज्जत को फेंचकर रख देना" आदि-आदि।

अब हम "मुझे चांद चाहिए" में आगत ऐसे क्रियारुपों पर विचार करेंगे--

"टाइमिंग, ब्लोकिंक, नाटक की शल्य-क्रिया करना, गर्भसिद्दि होना (गर्भवती होना), कलात्मक नियति पर मुहर लगाना, पक्क्यात जाना (लड़के का रोका कर लेना), जगत-विसर्जन की बात सोचना (आत्महत्या की बात सोचना) दस्तंदाजी करना (दखल देना) जिन्दगी का उठान पर होना, निकलना आइसबर्ग का, कौमार्य-विसर्जित करना (पहला संभोग), मधुमंद्रिका का संपन्न होना (सुहागरात का संपन्न होना), एक्सपेक्टिंग (गर्भवती होना), (प्रतिबद्ध-मंचन करना) मार्क्सवादी विचारधारा के नाटकों का मंचन करना, (किसीका फैमिनिस्ट कैप होना) नारीवादी महिला को गाली के रुप में, (पजैसिव होना) किसी के ईगो का किंगसाइज़ होना, किसी का कैरियारिस्ट होना, ओन द रोक्स सर्व करना (आइस-क्यूब डालकर व्हिस्की देना), किसी के साथ अपने "वाइव्स" का ठीक होना, स्मृतियों का सुगबंगाना, हम-प्याला होना, पूर्वरंग का बहुत खींचना (पृष्ठभूमि को लंबा कर देना), (कच्ची-पक्की रसोई बनाना) कुछ प्रदेशों में रोटी-सब्जी को कच्ची रसोई और पूड़ी-सब्जी को पक्की रसोई माना जाता है।, टिल्ट अप करना (सिनेमाई-क्रिया), हस्की स्वर में कहना, स्क्रीनिंग, अंकालिंगन करना (फोन के लिए अंक डायल करना), नाटकीय समक्षता, फिल्म को शेल्व कर देना (किसी फिल्म को ताक पर रख देना, उसका स्क्रनिंग रोक देना), पिक्चराइजेशन करना, टच्ड (आयम टच्ड = मैं प्रभावित हुआ), डिमांसट्रेशन करना, स्ट्रगल करना (सिनेमा में प्रवेश), पेटी का नीचे का प्रकार करना (हिट

बिलोद बेल्ट का भाषांतर), मितभूषी होना (मितभाषी के वजन पर कम वस्त्रों के लिए गढ़ा गया शब्द), ब्रा–विसर्जन करना (बिना ब्रा पहने पोज देना), सब्सटेंशियल रकम कमा लेना, किसी का लेस्बियन होना (स्त्री का स्त्री के साथ समलैंगिक सम्बन्ध), मोड होना (मोडर्न होना) किसी का बाथरुम में होना (किसी को टालने के लिए शहराती बहाना), किसी में स्टार मैटिरियल का होना (स्टार होने की क्षमता रखना), डबिंग (सिनेमाई क्रिया), सिंक्रोनाइजेशन करना, जगत–विसर्जन करना (मृत्यु होना), चांदी काटना (खूब कमाना), किसी को डिसओन करना (बेदखल कर देना), "ओवेशन" मिलना (स्टारवाला सम्मान मिलना), मिस्टीरियस टच देना, अनअटैच्ड न होना (एकाकी न होना), मान्यताओं का फ्लैक्सिबिल होना, एरोगेंट होना, डिटोक्सीफिकेशन के लिए जाना, किसी काले क्षण में आदमी का कमजोर पड़ जाना (आत्महत्या) चांदी के चम्मच के साथ पैदा होना, अनुपस्थित होना (देहांत के लिए "इन कैमेरा" में व्यवहृत शब्द) आदि–आदि।[45]

जहां "राग–दरबारी" में क्रियारुपों के नये प्रयोगों के लिए अनेक स्थानों पर सहायक क्रियारुप का प्रयोग करना पड़ा है, यहां प्रस्तुत उपन्यास में कई अंग्रेजी शब्दों और क्रियाओं का प्रयोग किया है। उपन्यास का परिवेश नाटक और फिल्म–जगत के साथ होने के कारण उन–उन क्षेत्रों के क्रियारुप आये हैं। कुछ क्रियारुपों का समावेश तो हम "नवीन मुहावरों" के अंतर्गत भी कर सकते हैं। "ब्रा–विसर्जन", "मितभूषी", "अंकालिंगन, "अनुपस्थित होना"(मृत्यु के लिए) जैसे कुछ नये शब्द भी लेखक ने "कोइन" किए हैं।

अब हम आलोच्य उपन्यासों में से "काशी का अस्सी" में आगत इस प्रकार के क्रियारुपों पर विचार करेंगे। "राग–दरबारी" की भांति यह उपन्यास भी व्यंग्यात्मक व राजनीतिक प्रकृति का है, अत: उसमें आये क्रियारुप भी तद्‌वत् होंगे––

दिव्य–निबटान को जाना, कवियाना (गन्ध से नाक) परपराने लगना, दुरदुराना, लतियाना, डंडा करना, अस्सी के फैनामेना बन चुकना, हुआं–हुआं

करना, भों-भों करना, बढ़ियाना (नदी का), पिड़कना, नेति-नेति करना, बुड़बक बुझाना, लुलुआना, बौडियाना, पेलना (वैसे दण्ड पेलना कहते है, पर यहां गज़ल पेली जाती है), बहुत ज्यादा विद्वता पादना, अकुलाय, जद्द-बद्द सुनाना, अनभल चाहना, पुष्टई करना, सठियाना, चकराना, गरमाना. सरकाना, उधिराय जाना, कहनवां (कहना), जपनवा, बबई गाय मल्हार, कइसन बहल, आदि-आदि।"[46]

यहां हम देख सकते हैं कि कुछ नवीन क्रियारूप लोकगीतों के कारण आये हैं या लोकबानी के कारण। अन्य दो उपन्यासों की तुलना में यहां "नामधातु क्रियाओं" के रूप में नये क्रियारुप हमें उपलब्ध हुए हैं।

नये मुहावरे:

नवीन अभिव्यंजना का एक मानदण्ड यह भी होता है कौन लेखक कितने नये मुहावरों को लेकर आता है और इस तरह अपनी मुहावरेदानी के द्वारा भाषा को और कितना समृद्व व संपन्न बनाता है। "नये मुहावरों" से हमारा तात्पर्य यह है कि प्रचलित-पारंपरिक मुहावरे का नये ढंग से प्रयोग करना या फिर अपने परिवेश से कोई नया मुहावरा बनाना। जैसे-जैसे कोई भाषा समृद्व होती जाती है, उसके मुहावरों का भंडार बढ़ता ही जाता है। हिन्दी में अब इतने मुहावरे मिलने लगे है कि स्वतंत्र रुप से उन पर मुहावराकोश बन रहे है।[47] कहावत की भांति मुहावरे भी जन-जीवन से ही बनते है। हमारे अधिकांश कार्य मुंह, आंख, कान, नाक, हाथ, पांव आदि से होते है; अत: ज्यादातर मुहावरे इनसे ही निर्मित होते है। उदाहरणतया यदि हम "हाथ" शब्द को ही लें तो इससे कई मुहावरे बने है, जैसे-हाथ चलाना (कार्यशीघ्रता से करना), हाथ का चलने लगना (किसी को मारने के लिए हाथ का उठना), किसी काम में हाथ होना, हाथ का चोक्खा या साफ, हाथ-सफाई, हाथोंहाथ लेना आदि-आदि। यद्यपि पूर्ववर्ती पृष्ठों में मुहावरे के संदर्भ में काफी-कुछ बताया गया है, तथापि कुछेक बातें जरूरी समझते हैं। डा.वासुदेवनंदन प्रसाद ने इस संदर्भ में कहा है--"ऐसा वाक्यांश जो सामान्य अर्थ

का बोध न कराकर किसी विलक्षण अर्थ की प्रतीति करावे "मुहावरा" कहलाता है। अरबी भाषा का "मुहाविरा" शब्द हिन्दी में मुहावरा हो गया है। उर्दूवाले "मुहाविरा" का ही प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ "अभ्यास" या "बातचीत" है। हिन्दी में "मुहावरा" एक पारिभाषिक शब्द बन गया है। कुछ लोग मुहावरा को "रोजमर्रा" और "वाग्धारा" भी कहते हैं।"[48]

अब क्रमशः हम अपने आलोच्य उपन्यास में आये इस तरह के मुहावरों का उल्लेख कर रहे हैं। सर्व-साधारण प्रकार के मुहावरों को न लेते हुए कुछ विशिष्ट मुहावरों को ही सूची बद्ध किया गया है--

दुकानदारिन की सारी संभावनाओं को एकसाथ देख डालना (पृ.6), घास खोदना (रिसर्च करने के लिए, पृ.7), एक निगाह से देखना (पृ.15), खानदानी हरामी (पृ.29), वीर्य की नदियां बहना (पृ.31), कानी कौड़ी न मिलना (पृ.35), पार्टीबन्दी के उस्ताद होना (पृ.38), तीसमारखां होना (पृ.51), चूं-भर करना (पृ.53), किसी के नाम में लाल लंगोटवाले का जोर बोलना (पृ.54), अंधेरे-उजेले में घूमना (पृ.54), ठिल्ले मार-मारकर हंसना (पृ.55), अंधों में काना राजा बनने के दिन लद गये (इसमें दो-दो मुहावरे एक साथ आये है, पृ.56), कभी न उखड़ने वाला गवाह (पृ.69), कभी न चुकनेवाला मर्द (पृ.69), मेढ़क को जुकाम होना (पृ.77), पिछल्ला दिखाकर चल देना (पृ.81), बात के बतासे फोड़ना (पृ.114), छातियों के आकार-प्रकार का हालचाल पूछना (पृ.118), चिमरखीदास बनना (होशियारी दिखाना, पृ.133), साफ-सुथरी धोती देना (चुनाव कराके पुनः स्थापित करना, पृ.134), अंड-बंड बके जाना (पृ.141), किसी के बिना उखाड़े एक रोआं तक न उखड़ना (पृ.149), पालक-बालक (पहलवानों के पट्ठे, पृ.158), नपुंसको की भाषा बोलना (किन्तु-परन्तु वाली भाषा, पृ.162), टहलना काम घोड़ी का (पृ.173), चूतड़ की खाल तक बेच देना (पृ.174), मजबूत कलेजे का होना (पृ.174), अपनी टेंट से जाना (पृ.180), तेली-तंबोली वाली औकात होना (पृ.186), गार्ड आफ आनर देना (पाखाना करती स्त्रियों का उठ खड़ा होना, पृ.187), किसी

को घास न डालना (पृ.192), विशेषज्ञोंवाली प्रेक्टिस करना (महत्वपूर्ण केसों में गवाही देना,पृ.214), जवानी पर पिल्ले मूतना (पृ.235), खुदा का गधों को जलेबियां खिलाना (पृ.245), ऐंचातानाप्रसाद होना (टेढ़ी आंखोवाला होना, हमारे यहां एक नया मुहावरा इसके लिए "कोइन" किया गया है-- एल.एल.टी.टी.-- लूकिंग टु लंडन एण्ड टाकिंग टु टोकियों, पृ.257), अड़तालीस घण्टे का दिन होना (कुछ भी हो जाना, पृ.258), कार्तिक की कुतिया होना (पृ.263), काला आदमी-जमीन पर हगनेवाला (पृ.279), युधिष्ठिर का बाप बनना (पृ.281), धोबी का निकल आना (किसी का विरोध के लिए निकल आना, पृ.286), भरत-मिलाप करा देना (पिटवाना, पृ.311), बहुमूत्र रोग हो जाना (डर लगने लगना, पृ.320), कीचड़ की चापलूसी करना (गलत का साथ देना, पृ.327), अपने घर का बाग होना (खुद की संस्था होना, पृ.329), भरतनाट्यम करने लगना (नाचने लगना, पृ.330) आदि-आदि।"[49]

यहां हमने उन मुहावरों को नहीं लिया है जिनका उल्लेख पूर्ववर्ती पृष्ठों में "नये क्रियारुपों" के अंतर्गत हो चुका है। इनमें पृ. सं. 6, 7, 31, 54, 69, 81, 114, 118, 133, 134, 158, 187, 214, 258, 286, 320, 329, 330 पर दिए मुहावरों को हम वाकई नये मुहावरे कह सकते हैं। अन्य मुहावरों का प्रयोग भी लेखक ने प्राय: नये ढंग से किया है।

"मुझे चांद चाहिए" में भी काफी नये मुहावरे आये हैं। यहां पर उन्हें सूचीबद्ध किया जा रहा है--

"किसी हादसे से दो-चार होना (पृ.15), सौन्दर्य-बोधीय विश्लेषण करके किसी की हथेली पर रख देना (पृ.17), इच्छा को कोल्ड स्टोरेज में स्थानांतरित कर देना (पृ. 18), संकरे से संसार में नये क्षितिजों को खोलना (पृ. 19), "बिजली-युग" में पदार्पण करना / घर में पहली बार बिजली का आना (पृ.20), सनाका खा जाना (आश्चर्य से भौं-चक्का रह जाना, पृ. 54), घोड़े बेचकर सोना (पृ. 73), जहां सींग समाये चली जाए (पृ. 74), सांड़ को लाल कपड़ा दिखाना (पृ. 76), किसी बात का पलीते में लौ का काम करना (पृ.78), उम्मीद के दीए

की टिमटिमाहट होना (पृ. 79), किसी का अंधेरा बांटना (पृ. 81), कलात्मक नियति पर मुहर लगा देना (पृ. 82), बरसाती नदी की तरह कूल-किनारे तोड़ देना (पृ. 85), दोबाला हुस्न की ताब न झेल पाना (पृ. 100), जाती दोजख में चौबीस घण्टों उबलना (पृ.118), जीवन के तीसरे पृष्ठ होना (तीसरे प्रेमी का जीवन में आना, पृ. 137), दो अंतरंग मित्रों के बीच हड्डी बनना (मूल मुहावरा है--कबाब में हड्डी बनना, पृ.156), बिलो द बेल्ट प्रहार करना (पृ.171), सात पीढ़ियों में कोई काम पहली बार होना (पृ.179), खूंटे से बंधना (लड़की का किसी से शादी करना, पृ.184), स्त्री-धर्म निभाना (विवाह करके बच्चे पैदा करना, पृ.184), किसी के ईगो का किंगसाइज होना (पृ.192), पेट का बिल्कुल वैक्यूम होना (पृ.213), कलात्मक क्षमता का लोहा मनवाना (पृ.227), किसी की दुखती रग होना (पृ.256), पूर्वरंग का लम्बा खींच जाना (बड़ी लम्बी भूमिका बांधना, पृ.280), हास्य-बोध का होना (पृ.284), लम्बी दौड़ का धावक होना (पृ.286), जुम्मा जुम्मा एक आर्ट फिल्म करना (पृ.306), सिंगार का स्यापा करना (पृ.311), किसी की हिस्ट्री न रखना (पृ.321), ताल ठोककर अखाड़े में आ जाना (पृ.343), फिल्म का शेल्व हो जाना (पृ.352), ब्रेक मिलना (सिनेमा में पहली बार चांस मिलना, पृ.369), बांछें खिल जाना (पृ.377), किसी के कपबोर्ड से स्केलेटंस निकानला (मनगढ़न्त गोसिप चलाना, पृ.402) जीवन-शैली का काली और त्रासद होना या रहना (पृ.410), स्क्रीन ब्यूटी होना (फिल्म के अनुकूल ब्यूटी होना, पृ.415), आर्ट फिल्म का हीरो या हीरोइन होना (चित्रनगरी मुंबई में किसी स्टार के लिए हिकारत का शब्द, पृ.415), दूसरों को टोपी पहनाना (ठगना, पृ.425), मुंह में दहीं जमा होना (किसी की बात का जवाब न देना, पृ.428), पौ बारह हो जाना (पृ.436), चांदी काटना (पृ.447), चित्रनगरी के दैनंदिन तापमान के साथ दिल का धड़कने लगना (पृ.456), किसी को स्टेपिंग-स्टोन की तरह इस्तेमाल करना (पृ.484), पलों का पहाड़- सा लगना (पृ.524), हाथ-पांव का फूल जाना (पृ.535), हाथ जोड़ना (किसी तरह मना लेना, पृ.535), उम्मीदों पर स्याही पोत देना (पृ.540),

किसी का आकाश पर होना (पृ.546--उन्नति की बुलंदियों पर होना), जान-बूझकर मक्खी निगलना (पृ.554), "चांदी के चम्मस के साथ पैदा होना / गर्भश्रीमंत होना (पृ.556), अंकालिंगन करना (फोन के लिए नंबर डायल करना, पृ.318) आदि-आदि।"

आलोच्य उपन्यासों में सबसे ज्यादा नये मुहावरे "मुझे चांद चाहिए" उपन्यास में मिलते हैं, यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि उसका परिवेश महानगरीय है। वह नाट्य-जगत और फिल्म-जगत से जुड़ा हुआ है। दूसरे उसका फलक भी काफी विस्तृत है। यह 571 पृष्ठों का एक बृहतकाय उपन्यास है। यहां जो मुहावरे दिए हैं वे कुछ विशेष और नये हैं, अन्यथा यह सूची दो-तीन गुना और बढ़ सकती थी। कुछ मुहावरे तो वाकई में ध्यान खींचते हैं, जैसे --बिजली युग का पदार्पण, जीवन के तीसरे पृष्ठ होना, किसी के ईगो का किंगसाइज होना, अंकालिंगन करना आदि-आदि।

"काशी का अस्सी" बनारसी-रंग और तबियत को उजागर करने वाला उपन्यास है, लिहाजा उसमें पाये जाने वाले मुहावरे भी उसीके अनुरुप हैं--

"जमाने को --- पर रखकर मस्ती से घूमने की मुद्रा, एक ही गांड़ से हगना, भाषा में व्याकरण के लिए कोई जगह का न होना, ज्ञान की बधिया बैठा देना, मुहल्ले के "डीह" होना ("डीह एक लोक-देवता होते हैं), किसी का मेढ़या पहलवान होना (पहुंचा हुआ होना), ---में डंडा करना, गांड़ में खूंटा पड़ाहोना, हड़बोंगई करना, कुटुम्मस करना (बुरी तरह से पिटाई करना), गज़लें पेल देना, कबाड़ा करना, दूध का दूध और पानी का पानी कर देना, पैदाइशी भाजपाई होना, पांच झंटकुल्ली होना (संख्या में बहम कम होना), अस्सी का पिस्सू होना, रहेंगे कांग्रेस में और गायेंगे लोहिया का, चेहरे पर खिलान होना, पंवारा गाना (दुखड़े रोना), मोनालिसा की मुस्कान को भी फेल कर देना, किसी के मुंह पर सरस्वती का बिराजमान होना (अस्सी के संदर्भ में इसका अर्थ होगा खूब गालियां बकना), ऐरा-गैरा-चमार-सियार-धरकार कोई भी आए और नाम लिखा ले (मूल मुहावरा "ऐरा-गैरा नत्थू खैरा है।), गुल खिलाना (मूर्ख

बनाना), मक्खी की तरह निकाल फेंकना, इंटरनेट भिड़ाए रहना, गांड काटकर पीपल पर टांग देना, गंडऊ-गदर मचाना, पादने तक की फुर्सत न होना, दिनभर आफिस में मराना (दिनभर खटना), बहुत ज्यादा विद्वता पादना (विद्वता बघारना), किसी का एकलव्य होना (इकल्ला शिष्य होना), दुरजोधनवाली गलती करना, लंडचटई करना, सेवा-टहल में कमी न रखना (अस्सी के मठों के संदर्भ में अर्थ कि यौन-सेवा में कमी न बरतना), "स्वयंसेवक संघ" के मर्तबान का अचार होना जहां कोई "इसमें", "उसमें", "जिसमें", "किसमें" नहीं होता।, छत्तीस का आंकड़ा, किसी वस्तु का रसातल में जाना, पादने तक का सहूर न होना, अस्सी का कसिया चूतिया, भगवान को भी झंडू बना देना, घर में भूंजी भांग का न रहना, प्रेम का अंखुआ फूटना, समाज का कचड़ा होना, झांसा-पट्टी देना, मनुवाद की शक्तिपीठ होना, शंकराचार्यों से टकराने का साहस रखना, जिन्दगी-भर किचाइन करना, सुबहे-बनारस, इक्कीसवीं सदी में आ चुकना, अरबों का वारा-न्यारा हो जाना, ईश्वर से भी सौदा करना, तीन-तेरह नहीं करना, बहरी अलंग जाना (दिव्य-निबटान हेतु गंगा पार जाना), आदि-आदि।[50]

यहां जो मुहावरे हैं उनमें गाली-गलोज है, स्लेंग्ज है, गंवई-रंग है, मौज-मस्ती है, गहरा राजनीति का रंग है। ये मुहावरे ही बनारस की, बल्कि अस्सी की पहचान है। इनके बिना भाषा अलूनी-सी, बेस्वाद – सी प्रतीत होती है। यह मुहावरेदानी लेखक काशीनाथ सिंह की भी अपनी भाषाई पहचान है।

नयी कहावतें:

"कहावत" एक प्रकार से सूत्रीभूत सत्य होता है। किसी सत्य या तथ्य को एक वाक्य में सूत्ररुप में कहा जाता है। कहावत को "लोकोक्ति" भी कहते हैं, इससे इतना तो तय है कि इनके जन्मदाता लोक ही है। लोक-साहित्य की भांति इनका निर्माण भी लोगों द्वारा ही होता है। डा. बदरीनाथ कपूर ने लोकोक्ति के संदर्भ में कहा है: "ऐसी अवसरोचित टिप्पणी को लोकोक्ति कहते हैं जो बंधे हुए

शब्दों में किसी वांछित या अवांछित स्थिति के सम्बन्ध में समाज के चिर-संचित अनुभव, ज्ञान या दृष्टिकोण की परिचायक हो।"[51]

इनके स्वरूप के सम्बन्ध में डा. कपूर कहते हैं----"अनेक लोकोक्तियां पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित होती हैं, अनेक लोगों के क्रियाकलापों के निष्कर्ष के रुप में होती है, कुछ व्यंग्य-प्रधान होती है, कुछ आदर्शों के लिए प्रेरणा स्वरूप होती है, कुछ सीख देनेवाली या दिशा-निर्देश करनेवाली होती है, कुछ तथ्यों का खंडन या मंडन भी करती है। लोकोक्ति के लिए कहावत या सूक्ति का प्रयोग भी होता है। कथा की संकेतक लोकोक्ति को हम कहावत कह सकते हैं।"[52] ऐसा प्रतीत होता है कि कहावत का सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में किसी कथा से होता है। "कथा" शब्द बना है संस्कृत धातु "कथ्" से। कहावत के लिए कभी "कथावत्" शब्द प्रचलित होगा। "थ" वर्ण में "त + ह" की ध्वनियां होती है। यहां "त" का लोप हो गया, और इस प्रकार शब्द व्युत्पन्न हुआ "कहावत"।[53] जो भी हो, कहावतों के प्रयोग से भाषा में जीवन्तता का समावेश हो जाता है। ग्रामीण लोगों की भाषा में कहावत-मुहावरों का प्रयोग अधिक होता है। हमारे आलोच्य उपन्यासों में "राग-दरबारी" का तो सीधा सम्बन्ध गांव से है। उसमें "शिवपालगंज" नामक गांव की कथा को लिया गया है। "काशी का अस्सी" में बनारस है, परन्तु वहां के ज्यादातर बासिन्दों का सम्बन्ध गांवों से है और उनकी बोली भी अवधी या भोजपुरी है। तृतीय उपन्यास "मुझे चांद चाहिए" का प्रथम खण्ड शाहजहांपुर से सम्बद्ध है, जिसे हम कस्बा कह सकते हैं। यहां हमारा उपक्रम अधिकांशत: नयी कहावतों को प्रस्तुत करने का रहेगा, क्योंकि सामान्य और पारंपरिक कहावतों की चर्चा तो उन-उन उपन्यासों की भाषिक-संरचना की पड़ताल में हो गई है। अब क्रमश: आलोच्य उपन्यासों में आगत इस प्रकार की कहावतों को हम रेखाकिंत करेंगे।

"राग-दरबारी" उपन्यास में जो नयी कहावतें प्रयुक्त हुई है, वे इस प्रकार है--

(1) वर्तमान शिक्षा- पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है। (2) हाथी आते हैं, घोड़े जाते हैं, बेचारे ऊंट गोते खाते हैं। (3) तुम हो सरकार के तो हम भी हैं दरबार के। (4) स्त्री पेट के रास्ते आदमी के हृदय पर कब्जा करती है। (5) आग खाओगे तो अंगार हगोगे। (6) जिस किसी की दुम उठाकर देखो मादा ही नज़र आता है। (7) हमारी ही पाली लोमड़ी और हमारे ही घर में हुआ-हुआ। (8) कल्ले में जब बूता नहीं होता तभी इन्सानियत के लिए जी हुड़कता है। (9)जइस पसु, तइस बंधना। (10) अपनी जोरू को जो काबू में नहीं रख पाया वह उमर-भर बेचारा ही रहेगा। (11) सोलह सौ सूअरों को निमंत्रण देते घूम रहे हैं पर हालत यह है कि स्थान-विशेष में पाखाना तक नहीं है। (12) टहलना काम है घोड़ी का, मर्द बच्चे का नहीं। (13) टके की दुकान पर कोई साला पिकासों थोड़े ही लटकायेगा। (14) बेवकूफी भी अपने आप में एक वैल्यू हैं। (15) देह पर नहीं लत्ता, पान खाये अलबत्ता। (16) माशूकों के तीन नाम: राजा, बाबू, पहलवान। (17) हाथी अपनी राह चले जाते हैं, कुत्ते भूंकते रहते हैं। (18) बीस लड़कों के बाप को बताना कि औरत क्या चीज होती है। (19)कल के जोगी, चूतड़ तक जटा। (20) गिलहरी के सिर पर महुआ चू पड़े तो समझेगी कि गाज गिरी है। (21) शहर का आदमी, सूअर का-सा लेंड़-न लीपने के काम आवे न जलाने के। (22) मास्टर होकर मार खाने से कहां तक डरोगे? (23) लौंड़ो की दोस्ती, जी का जंजाल। (24) आपके घर का बाग है, आम खाइए, पेड़ क्यों गिन रहे है। (25) अखाड़े का लतमरुआ भी पहलवान हो जाता है। (26) गाय ही चली गई तो पगहे का क्या अफसोस? (27) गू खाय तो हाथी का खाय। (28) घोड़े की लात और मर्द की बात कभी खाली नहीं जाती। (29) घोड़े की लात घोड़ा ही सह सकता है। (30)नंगा चूतर मां बिरवा जामा, तो नाचै लाग, कहिसि कि चलो छांइ होई। /अवधी कहावत (31) मेंढ़क को जुकाम होना। (32) हाथी का लेंड़ भी क्विन्टल का होता है। आदि-आदि।[54]

यहां जो कहावतें हैं, ग्रामीण पृष्ठभूमि के अनुरुप है। दूसरे उपन्यास व्यंग्य-उपन्यास है। अत: उसकी जो प्रकृति है, वह भी हास्य-व्यंग्य-प्रधान है।

यहां अमूमन वे कहावतें हैं जो साधारणतया लोकोक्तिकोशों या कहावत-कोशों में नहीं पायी जाती। कुछ अवधी कहावतें भी है और कुछ ऐसी है कि कहावत और व्यंग्य-वाक्य में विभाजक रेखा खींचना मुश्किल हो जाए, जैसे--"वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है।" या "जिसकी दुम उठाकर देखो मादा ही नज़र आता है। "मेढ़क को जुकाम होना" को मुहावरे में भी रख सकते हैं और कहावत में भी। यह उसके प्रयोग पर निर्भर करता है। यथा--सनिचर के व्यवहार को देखकर बद्री पहलवान ने फब्ती कसी कि अब तो मेंढ़क को भी जुकाम होने लगा है। और--अब तो सनिचर खुद को मंगलप्रसाद कहलाना पसंद करते है, इसे कहते है--मेंढ़क को जुकाम होना।" तो यहां प्रथम अभिव्यक्ति में वह मुहावरा है और दूसरी अभिव्यक्ति में कहावत।

दूसरा उपन्यास है--"मुझे चांद चाहिए"। उसमें भी लेखक ने नवीन भाषा भिव्यंजना हेतु कुछ नयी कहावतों का प्रयोग किया है। रूढ़ कहावतों पर पूर्ववर्ती पृष्ठों में चर्चा हो चुकी है, अत: यहां हम केवल उन कहावतों को स्थान देंगे जिनमे भाषिक-संरचना की दृष्टि से कुछ नयापन श्रुतिगोचर होता है। यथा----

(1)लड़की की लाज मिट्टी का सकोरा है। (2)करौंदे की झाड़ी दोहद के बाद का खिला अशोक बनना चाहती है। (3) बरसाती बावड़ी गंगा की ओर देखेगी तो मलिन ही होगी। (4) रंगमंच आत्मरति का सिंहद्वार नहीं है। (5) जो अभिनेत्री सिर्फ शूद्रक की वसंतसेना बनना चाहती है, शेक्सपियर की डायन नहीं, उसे बहावलपुर हाउस में फांसी पर चढ़ा देना चाहिए। (6)जो कलाकार नाट्य-समीक्षा में सबसे पहले अपना नाम ढूंढता है, उसकी सही जगह बहावलपुर हाउस नहीं, साइबेरिया का यातना-शिबिर है। (7) गंगू तेली के घर राजा भोज पधारे हैं। पुरानी कहावत का नये ढंग से प्रयोग, पुरानी कहावत--"कहां राजा भोज, कहां गंगू तेली?"? (8) छप्पर की लकड़ी की पहचान भादों में ही होती है। (9) मृत्यु चाहे कितने ही उत्कृष्ट रूप में हो, उस जीवन से बेहतर नहीं हो सकती, जो चाहे कितना ही निकृष्ट हो। / विषकन्या में चाणक्य (10) कच्ची उम्र ताश का जोकर है, जिसे विपरीत पक्ष अपनी सुविधा के अनुसार किसी भी जोड़ी में मिला

लेता है। (11) वरिष्ठिता मूल्यांकन का एक तत्व हो सकती है, कसौटी नहीं। (12) शिक्षक की कला मेधावी शिष्य के पास पहुंचकर वैसे ही खिलती है, जैसे बादल का पानी सीपी में पहुंचकर मोती बन जाता है। (13)जो श्मशान में आग फूंकता है, वह क्या अपने बसेरे में आग लगा देता है? (14) किसी में टेलेण्ट है तो उसे रोका नहीं जा सकता, सिर्फ़ डिले किया जा सकता है। (15) लव इज़ ए गुड रिक्रिएशन। (16) पपी के बिना स्टार की शोभा वैसे ही पूरी नहीं होती जैसे मंगलसूत्र के बिना सुहागिन की। (17) जूम लैस का इस्तेमाल गरीब की जोरू की तरह होता है। / पुरानी कहावत का नवीन प्रयोग, मूल कहावत----गरीब की जोरू सबकी भाभी। (18)फिल्म सही मानों में किसी एक सपने की ताबीर होती है। (19)समृद्धि के साये हमेशा लम्बे होते हैं। (20)शहर उतने नहीं बदल जाते जितने हम बदल जाते है। (21) हम अपने मित्र और प्रेमी बदल सकते है, रक्त-संबंध नहीं। (22) कहानी की अपील मुझे क्लासेज के लिए लगती है, मासेज के लिए नहीं/ एक फिल्मी कहावत। (23) विपुल धन मन के स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं, इससे मूल्यों और मान्यताओं का संतुलन गड़बड़ा जाता है। (24) मुंह और हाथ के निवाले में चार सूत का फासला होते हुए भी आदमी भूखा मर सकता है। (25) किसी को प्रेम करने का अभिप्राय यह है कि उस व्यक्ति के बगल में तुम वृद्ध होने के लिए तैयार हो। उपन्यास के हिसाब से प्रेम की अंतिम परिभाषा, संवाद-कालिगुला। आदि-आदि।"[55]

यहां कुछ ऐसे वाक्यों को भी रखा गया है जो सूत्रात्मक प्रकार के हों, पर यह भी सत्य है कि जैसे कोई बिम्ब प्रयोग में आते-आते प्रतीक में बदल जाता है, उसी तरह आज के ये सूत्र कल की कहावतें भी बन सकते हैं। ये कहावतें उपन्यास के रूपबंध तथा परिवेश के अनुरुप हैं।

"काशी का अस्सी" हमारे आलोच्य उपन्यासों में तीसरा है। वह काशी के "अस्सी" लोकेल को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। यहां उसमें आगत कुछ नयी कहावतों को उद्धत किया जा रहा है--

(1) जो पठितव्यम् तो मरितव्यम्, न पठितव्यम् तो मरितव्यम्, फिर दांत कटाकट क्यों करितव्यम्? (2) परलै राम कुकुर के पाले, खींच-खींच के ले गए पाले। (3) जनता धूर्त को नहीं मूर्ख को चाहती है। (4) सिद्धान्त सोने का गहना है, रोज-रोज पहनने की चीज़ नहीं। (5) पूरवा बयार और रांड का रोना अशुभ होता है। (6) भाई, भतीजा, भानजा, भांड, भूत,भुइंहार, ए छहो भकार से, सदा रहो हुशियार। /ऐसी एक कहावत गुजरात में भी प्रचलित है--"वाणियों, कोणियो अने स्वामिनारायणियों, ए तणनों विश्वास नो कराय।" अर्थात् बनिया, काना व्यक्ति और स्वामिनारायण का अनुयायी इन तीनों का विश्वास नहीं कर सकते। (7) काम करो बनिये का मजे ले लो दुनिये का। (8) जब भाग्य ही गदहे की फोद से लिखा गया हो तो हवन-पूजन क्या कर सकता है? (9) जहां गई डाढ़ो रानी, वहां पड़े पाथर पानी।/ इससे मिलती-जुलती एक और कहावत है--"जहं जहं चरण पड़े संतन के तहं-तहं बंटाढार। (10)मास्टर की सुबह और रंडी की शाम नहीं खराब करना चाहिए। (11) कौरा खानेवाले क्या शासन करेंगे?/ इससे मिलती-जुलती एक कहावत है-- भीख की हांडी शीके पर नहीं चढ़ सकती। (12) का करी रेती, का करी मेला? लाढ़ेराम गुरु, बाकी सब चेला। / बनारस के पंड़ों में रूपये-पैसे के लिए कोड-वर्ड के रुप में "लाढ़ेराम" चलता है। (13)इसने / अस्सी ने / जिसका तिलक किया, वह राजा हुआ। (14) जो यहां/मतलब कि अस्सी में/ नहीं है, वह कहीं नहीं है, लेकिन जो कहीं नहीं है, वह भी यहीं है।/यन्न भारते तन्न भारते की तर्ज पर (15) बाभनों में तिवारी, ऊंट की सवारी, मयभा महतारी, हैजा की बीमारी, लालाओं में पटवारी, कोंहड़ा की तरकारी--और इसीमें एक और जोड़ लो--अमरीकन नारी, इनका कोई भरोसा नहीं। (16) अस्सी-भदैनी का ऐसा कोई घर नहीं जिसमें पंडे, पुरोहित और पंचांग न हों और ऐसी कोई गली नहीं जिसमें कूड़ा, कुत्ते और किरायेदार न हों। (17)द्वीपों में द्वीप जम्बूद्वीप। (18) ड्रायवर की जिन्दगी हंसी और खेल है, मौत से बचा तो सेन्ट्रल जेल है। (19)जो बीबी से करे प्यार, वह प्रेस्टिज़ से कैसे करे इन्कार? / बाजारवाद का प्रभाव (20) एक बीमार, दस तीमारदार। (21) रांड,

सांड, सीढ़ी, संन्यासी इनसे बचे सो सेवे काशी। / इस कहावत का एक दूसरा संदर्भ उपन्यास में इस तरह आया है-- "आंकड़े हैं मेरे पास रांड़ो, सांड़ो और संन्यासियों के।" यह कैथरीन शर्मा का कथन है जो वाराणसी पर रिसर्च कर रही है। (22) जो मजा बनारस में, वह न पेरिस में, न फारस में। आदि-आदि।"[56]

यहां जो कहावतें उद्धत हुई है वे कहावतें अस्सी के माहौल के अनुरुप है। इन कहावतों में एक प्रकार का वैविध्य है। उनमें भी वहीं बनारसी-रंग और मौज-मस्ती का आलम दिखता है। इन कहावतों ने निश्चित रूप से भाषिक-संरचना की दृष्टि से हिन्दी की नवीन भाषा भिव्यंजना में इजाफ़ा किया है इसमें दो राय नहीं हो सकती।

तकिया-कलाम:

हिन्दी आलोचना में "तकिया-कलाम" की चर्चा पात्रों के चरित्र-चित्रण के संदर्भ में आती है। पात्र के दो पक्ष होते हैं--बाहरी आपा और बीतरी आपा अर्थात् बाह्य-व्यक्तित्व और आंतरिक व्यक्तित्व। इनमें से बाह्य-व्यक्तित्व या बाहरी आपा के संदर्भ में "तकिया-कलाम" की चर्चा आती है। बाहरी आपे में व्यक्ति के बाहरी खाके के साथ-साथ उसकी बोली-बानी का भी जिक्र होता है। यह हमारा सबको अनुभव है कि समाज में कुछ लोग होते हैं जो किसी खास शब्द या जुम्ले का प्रयोग बोल ने में करते हैं। उनके मुंह से वह शब्द-विशेष या वह जुम्ला बार-बार उच्चरित होता है। बोलने का यह जो "टोन" है, आदत या "हेबिट" है, उसे ही "तकिया-कलाम" का नाम दिया गया है। उसे "सखुन-तकिया भी कहा जाता है।[57]

आलोच्य तीनों उपन्यासों में ये तकिया-कलाम मिलते हैं। "राग-दरबारी" उपन्यास में एक पात्र का जिक्र आया है जिसे भाषण करने का शौक है और जो अपने वक्तव्य में बार-बार "क्या नाम है उसका"--जुम्ले का प्रयोग करता है। यथा--"इस रिपोर्ट में--क्या नाम है उसका--ग़बन की बात नहीं कही गयी है। यहां एक लुच्चा सुपरवाइज़र था--क्या नाम है उसका--रामसरुप नाम था। ग़बन

कर दिया साले ने--क्या नाम है उसका-- शहर को दो ठेले गेहूं लदवाकर भाग गया। शराब पीता था, क्या नाम है उसका-- रण्डीबाजी भी करता था।"[58] यह सिलसिला आगे भी चलता है।

"मुझे चांद चाहिए" में "तकिया-कलाम" की चर्चा एक-दूसरे रूप में आती है। चतुर्भुज धनसोखिया वर्षा के साथ एन.एस.डी.और बाद में रिपर्टरी में भी थे। वर्षा को जब "ब्रेक" मिलता है और वह स्थापित भी हो जाती है, तब चतुर्भुज भी अपना नसीब आजमाने के लिए मुंबई की राह पकड़ते हैं और उन्हें कोमेडियन के रूप में "ब्रेक" मिलता है। पर बोलीवुड की एक दूसरी सच्चाई भी यहां उजागर होती है कि ये लोग इमेज के गुलाम होते हैं। किसी कलाकार की जो इमेज बन जाती है, अपनी कैरियर-भर उसे ढोना पड़ता है। चतुर्भुज की इमेज भी "तकिया-कलाम" वाले कोमेडियन के रूप में बंध जाती है। "दर्द का रिश्ता" में इनका तकिया-कलाम "मैं बोल्लूं" इतना चल पड़ता है कि अब हर फिल्म में उनसे यह फरमाइश होती कि ऐसा ही कोई नया "तकिया-कलाम" वे इजाद करें।[59]

"काशी का अस्सी" में "अस्सी" अपने आप में एक चरित्र है और उसका तकिया-कलाम है वहां की गालियां। रामजी राय नामक चरित्र को भोजपुरी गालियों का माइक टायसन कहा जाता है। उसका कोई वाक्य गाली के बिना पूरा नहीं होता है।[60] यही गालियां इस उपन्यास में "तकिया-कलाम" का कार्य करती हैं।

मुद्रा अलंकार:

ऐसा नहीं होता है कि "पद्य" या "कविता" में ही अलंकार होते हैं और गद्य में नहीं होते। गद्य में भी अलंकार रहते हैं। पूर्ववर्ती पृष्ठों में जिन "नये उपमान" या "नये रूपक" की चर्चा की है, अलंकार की दृष्टि से वे क्रमशः उपमा और रूपक अलंकार के अंतर्गत आते हैं। "मुझे चांद चाहिए" में तो कई स्थानों पर संस्कृत काव्य-ग्रन्थों की चर्चा उपलब्ध हैं, अतः संस्कृत में पाए जाने वाले कई अलंकार, उत्प्रक्षा आदि मिलते हैं। "विशेषण-विपर्यय" की चर्चा भी

हम कर चुके हैं। यहां हम अपेक्षाकृत कम चर्चित ऐसे एक अलंकार की बात कर रहे हैं, जिसका नाम है–मुद्रा अलंकार।

"मुद्रा" शब्द संस्कृत के "मुद्" धातु से व्युत्पन्न हुआ है। मुद्रा का एक अर्थ हाव–भाव का प्रकटीकरण है। नाटक में विभिन्न प्रकार की "नाट्य–मुद्राएं" होती है। नाथपंथी तांत्रिक शब्दावली में भी मुद्रा शब्द का महत्व है जिनका सम्बन्ध अंगुलियों के विशिष्ट आध्यात्मिक संकेतों से है। इसी वजह से मुद्रा का एक अर्थ रहस्य भी है। नृत्य में अंगुलियों और हाथों की मुद्राओं में इन्हें बखूबी समझा जा सकता है। गौरतलब है कि नृत्य अपने प्राचीन रूप में ईश्वर आराधना की शैली ही रही है। बतौर मुहर, इन तमाम भावार्थों की व्याख्या यही है कि शासकीय या अन्य सांस्थानिक दस्तावेज़ों पर अंकित आधिकारिक–प्रामाणिक निशान या चिह्न को ही मुद्रा कहते हैं।[61]

इसी मुद्रा से काव्यशास्त्र में "मुद्रालंकार" की सृष्टि हुई है। इसमें किसी काव्य पंक्ति पर किसी पूर्व–कवि या लेखक की रचना की मुद्रा का आभास होता है। उदाहरण से बात अधिक स्पष्ट हो सकती है, क्योंकि "एक्जाम्पल्स आर बेटर एक्सप्लेनेशन" ऐसा कहा गया है। निम्नलिखित दोहा देखिए--

"बबूल–गरीबी बोय के नेता खाते आम।
कबिरा अब तो हो रही रीति जगत की बाम।"[62]

यहां पर कबीर का मूल दोहा यह है-----

"करताा था सो क्योंकिया, अब करि क्यों पछताय।
बोया पेड़ बबूल का आम कहां से खाय।"

तो उक्त प्रथम दोहे में हमें कहीं–न–कहीं कबीर की मुद्रा मिलती है। अत: यहां मुद्रालंकार की सृष्टि हुई है।

हमारे आलोच्य उपन्यासों में से "मुझे चांद चाहिए" में कई स्थानों पर यह अलंकार मिलता है। वर्षा की बड़ी बहन गायित्री का विवाह जैसे–तैसे होता है। पहले दो–तीन लड़के उसे रिजेक्ट कर चुके थे। आखिर में उसका विवाह संपन्न हो जाता है। गर्भवती अवस्था में जब वह शाहजहांपुर आती है, तो रात–दिन अपने

पति और सास के बारे में ही बात करती रहती है। वहां एक पंक्ति आयी है---"मुंगेरी तेरा चरित स्वयं ही काव्य है।" इस पंक्ति पर गुप्तजी की "राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है" वाली पंक्ति की मुद्रा है। अत: यहां मुद्रा अलंकार की उपलब्धि होती है।[63]

इसी तरह वर्षा वसिष्ठ को चेखव का बड़ा भारी "ओब्शेसन" है। ओल्गा निपर चेखव की प्रेयसी और पत्नी है। एक स्थान पर वर्षा कहती है--"एंटन पावलोविच, सच-सच बताना, ओल्गा निपर में तुमने क्या देखा, जो तुम्हारी वह प्रेमिका भी बनी और पत्नी भी?"[64] तो यहां पर नागार्जुन की काव्य-पंक्ति "कालिदास, सच-सच बतालाना" की मुद्रा स्पष्ट होती है। उसी तरह एन.एस.डी. के आदित्य को जब फिल्म-जगत में पहला "ब्रेक" मिलता है, तब स्नेह "मंडी हाउस का शाप" नामक कविता सुनाते हैं, जो "गांधारी के शाप" की तर्ज पर बनी थी।[65] अत: यहां भी मुद्रालंकार की सृष्टि जाने-अनजाने हो गई है। इस प्रकार की प्रस्तुतियां भाषा को नवीन अभिव्यंजना प्रदान करती हैं और उससे भाषिक-रचाव में एक प्रकार की नाटकीयता और सौन्दर्य का समावेश हो जाता है।

निष्कर्ष:

अध्याय के समग्रावलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि तीनों आलोच्य उपन्यास नवीन भाषा भिव्यंजना की दृष्टि से भी हिन्दी की भाषिक-संरचना में संपन्नता और समृद्धि प्रदान करते हैं। नवीन भाषाभिव्यंजना और शिल्प के कई उदाहरण हमें तीनों उपन्यासों में उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त इन तीनों उपन्यासों में पुष्कल परिमाण में नये उपमान, नये रुपक, नये क्रियारुप, नवीन विशेषण विपर्यय, नवीन मुहावरे, नवीन कहावतें आदि के उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं, जिनसे इस बात की प्रतीति व पुष्टि होती है कि इन तीनों लेखकों ने असंदिग्धतया औपन्यासिक भाषा में सौन्दर्यबोधीय परिमाण जोड़े हैं।

: : सन्दर्भानुक्रम : :

(1) द्रष्टव्य: प्रेमचंद : कुछ विचार : पृ. 46 ।

(2) द्रष्टव्य: मुझे चांद चाहिए: डा. सुरेन्द्र वर्मा। पृ.112।

(3) द्रष्टव्य: काशी का अस्सी: काशीनाथ सिंह: पृ.92/

(4) एक फिल्मी गज़ल का शेर।

(5) कहीं सुनी हुई कविता की पंक्तियां

(6) पीली छत्रीवाली लड़की : उदयप्रकाश : पृ.114।

(7) वही : पृ.114।

(8) राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल : पृ.382।

(9) और (10) : वही : पृ. क्रमश : 317, 187।

(11) द्रष्टव्य : आधुनिक हिन्दी उपन्यास : खण्ड-। : पृ.228।

(12) द्रष्टव्य : वही : पृ.231।

(13) और (14) : वही : पृ.क्रमश: 233, 228।

(15) राग दरबारी : पृ.258।

(16) द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास:
डा. पारुकान्त देसाई: पृ.47।

(17)सूखे सेमल के वृन्तों पर : डा. पारुकान्त देसाई – पृ.60।

(18)राग दरबारी : पृ.29।

(19)मुझे चांद चाहिए : पृ.93।

(20)और (21) : वही : पृ. क्रमश: 125,126।

(22)स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास: सं. गुजरात हिन्दी प्राध्यापक परिषद:
डा. देसाई का आलेख।

(23)मुझे चांद चाहिए : पृ.137।

(24)काशी का अस्सी : पृ.110।

(25)और (26) : वही : पृ.क्रमश: 112,112-113 ।

(27) चुनी हुई कविताएं : अज्ञेय : पृ. 21 ।

(28) चिंतनिका : डा. पारुकान्त देसाई : पृ.106-107 ।

(29) मुझे चांद चाहिए : पृ. क्रमशः 13, 42, 58, 86, 89, 112, 123, 124, 133, 142, 199, 201, 268,286, 316, 187, 187, 363, 365, 283, 387, 387, 392, 414, 483, 496, 497, 500, 505, 506 ।

(30) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 17, 24, 74, 74, 75, 87, 112, 113, 148, 11, 11, 12, 12, 12, 12,12 ।

(31) द्रष्टव्यः समीक्षायण : पृ. 161 ।

(32) उपन्यास क्रमशः डाक बंगला /पृ.60/, कृष्णकली / पृ.53/ रेखा / पृ.7/, उठारह सूरज के पौधे / पृ.61/ और कालाजल / पृ. 307/

(33) राग दरबारी : पृ. क्रमशः 9, 150, 360, 158, 230, 258, 327, 23, 67 ।

(34)मुझे चांद चाहिए : पृ. क्रमशः 13, 14, 67, 67, 117, 128, 140, 148, 148, 165, 171, 180, 195, 197, 216, 220, 229, 241, 242, 247, 252, 267, 269, 272, 278, 285, 315, 341, 345, 345, 367, 395, 440, 504, 504, 515 ।

(35) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः 24, 34,112,113,136 ।

(36) समीक्षायण : पृ. क्रमशः 167 ।

(37) आगामी अतीतः कमलेश्वर : पृ. क्रमशः 12,48,50 ।

(38) अंधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश : पृ. क्रमशः 120, 295, 439, 439, 441 ।

(39) बैसाखियों वाली इमारतः रमेश बक्षी : पृ. क्रमशः 2, 17, 40, 72, 72, 98, 10, 109, 128 ।

(40) सूरजमुखी अंधेरे के : कृष्णा सोबतीः पृ. क्रमशः 25, 91, 90, 110, 111, 113, 119, 106 ।

(41) मुझे चांद चाहिए : पृ. क्रमशः 17,18,21,22,31,38,60,68,78,82,84,92,114,119,

119,148,148,180,180,186,195,210,217,247,254,
266,269,273,273,273,273,277,285,308,309,316,
317,325,329,341,346,347,351,360,382,384,415,
417,418,422,436,438,484,496,497,503,509,509,
519,527,528,529,536,536,542,542,542,549,556, 568 ।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

(42) राग दरबारी : पृ. क्रमशः 318, 335, 349, 397, 420, 91, 114,

125, 141, 142, 162, 214,263, 298, 320 ।

(43) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः

21,42,42,45,52,56,56,60,61,65,70,71,79,99,99,
103,111,115,131,162,169 ।

(44) राग दरबारी : पृ. क्रमशः

24,37,55,71,73,75,83,89,91,91,125,133,133,133,159,
159,162,182,191,199,215,235,236,289,296,330 ।

(45)मुझे चांद चाहिए : पृ. क्रमशः

63,68,68,77,82,85,86,104,104,105,121,139,152,
164,167,174,192,201,207,215,233,234,280,285,
295,306,308,318,326,352,364,364,364,370,385,
396,396,406,408,412,419,423,425,425,432,447,
450,455,470,481,505,526,528,549,556,570 ।

(46) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः

12,17,17,23,23,23,29,37,37,40,42,43,55,61,78,78,78,8
5,88,112,146,146,146,146,146,156,156,157,157 ।

(47) द्रष्टव्य: हिन्दी मुहावरे और लोकोक्ति कोश: डा.बदरीनाथ कपूर।

(48) आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना: डा.वासुदेवनंदन प्रसाद :

पृ. 298 ।

(49) सभी मुहावरे "राग दरबारी से हैं, पृ. संख्या कोष्ठक में दी गई है।

(50) काशी का अस्सी : पृ. क्रमशः

11,12,13,13,18,21,23,35,35,37,39,43,44,46,46,47,57,
57,57,58,62,64,65,69,68,72,74,74,75,78,79,
85,92,92,93,94,96,98,98,101,105,106,108,107,
108,116,128,140,143,145,156,169 ।

(51)हिन्दी मुहावरे और लोकोक्तिकोश : डा.बदरीनाथ कपूर: :पृ. 15 ।

(52) वही : पृ. क्रमश: 15 ।

(53)द्रष्टव्य : शब्दों का सफ़र : पहला पड़ाव: डा. अजितवडनेरकर :

पृ. 344 ।

(54) राग दरबारी : पृ. क्रमश:

10,34,55,69,71,71,77,81,142,159,173,173,186,
186,186,196,200,236,269,275,276,282,298,303,
320,195,316,249,170,239,253,103,245 ।

(55) मुझे चांद चाहिए : पृ. क्रमश:

32,34,34,128,128,128,159,200,226,241,276,276,311,
342,387,414,436,462,474,478,502,516,532,536,567 ।

(56) काशी का अस्सी : पृ. क्रमश:

14,28,30,34,39,46,50,52,56,83,93,104,108,111,
116,135,148,150,159,12 ।

(57) हिंदी पर्यायवाची कोश: डा.भोलानाथ तिवारी : पृ. 248 ।

(58) राग दरबारी : पृ. क्रमश: 287 ।

(59) द्रष्टव्य : मुझे चांद चाहिए : पृ. 380 ।

(60) काशी का अस्सी : पृ. क्रमश: 28 ।

(61) शब्दों का सफर : पृ. क्रमश: 194 ।

(62) मानसमाला : पृ. क्रमश: 20 ।

(63) द्रष्टव्य : मुझे चांद चाहिए : पृ. क्रमश: 44 ।

(64) वही : पृ. क्रमश: 137 ।

(65) वही : पृ. क्रमश: 149 ।